ईश-स्तुति (प्रातः कालीन)

ईश-स्तुति

सब क्षेत्र क्षर अपरा परा पर औरू अक्षर पार में।
निर्गुण के पार में सत् असत् हू के पार में ।।1।।
सब नाम रूप के पार में मन बुद्धि वच के पार में।
गो गुण विषय पँच पार में गति भाँति के हू पार में।।2।।
सूरत निरत के पार में सब द्वन्द्व द्वैतन्ह पार में।
आहत अनाहत पार में सारे प्रप´चन्ह पार में।।3।।
सापेक्षता के पार में त्रिपुटी कुटी के पार में।
सब कर्म काल के पार में सारे ज्जालन्ह पार में।।4।।
अद्वय अनामय अमल अति आधेयता-गुण पार में।
सत्ता स्वरूप अपार सर्वाधार मैं-तू पार मे।।5।।
पुनि ओऊम् सोहम् पार में अरू सच्चिदानन्द पार में।
हैं अनन्त व्यापक व्याप्य जो पुनि व्याप्य व्यापक पार में।।6।।
हैं हिरण्यगर्भहु खर्व जासों जो हैं सान्तन्ह पार में।
सर्वेश हैं अखिलेश हैं विश्वेश हैं सब पार में।।7।।
सत्शब्द धर कर चल मिलन आवरण सारे पार में।
सद्गुरु करूण कर तर ठहर धर 'मेंहीं' जावे पार में।।8।।

प्रातः सांयकालीन सन्त-स्तुति

सब सन्तन्ह की बड़ि बलिहारी।
उनकी स्तुति केहि विधि कीजै,
मोरी मति अति नीच अनाड़ी।।सब.।।1।।
दुख-भंजन भव-फंदन-गंजन,
ज्ञान-घ्यान निधि जग-उपकारी।
विन्दु-ध्यान-विधि नाद-ध्यान-विधि
सरल-सरल जग में परचारी।।सब.।।2।।
धनि- ऋषि-सन्तन्ह धन्य बुद्ध जी,
शंकर रामानन्द धन्य अघारी।
धन्य हैं साहब सन्त कबीर जी
धनि नानक गुरू महिमा भारी ।। सब.।।3।।
गोस्वामी श्री तुलसि दास जी,
तुलसी साहब अति उपकारी।
दादू सुन्दर सुर श्वपच रवि
जगजीवन पलटू भयहारी।। सब.।।4।।

सतगुरु देवी अरू जे भये, हैं,
होंगे सब चरणन शिर धारी।
भजत है 'मेँहीँ' धन्य-धन्य कहि
गही सन्त पद आशा सारी।। सब.।।5।।

प्रातःकालीन गुरु-स्तुति

"दोहा"

मंगल मूरति सतगुरु, मिलवैं सर्वाधार।
मंगलमय मंगल करण, विनवौं बारम्बार।।1।।
ज्ञान-उदधि अरू ज्ञान-घन, सतगुरु शंकर रूप
नमो-नमो बहु बार हीं, सकल सुपूज्यन भूप।।2।।
सकल भूल-नाशक प्रभू, सतगुरु परम कृपाल।
नमो कंज-पद युग पकडि, सुनु प्रभुं नजर निहाल।।3।।
दया दृष्टि करि नाशिये, मेरो भूल अरू चूक।
खरो तीक्ष्ण बुधि मोरि ना,पाणि जोड़ि कहुँ कूक।।4।।
नमो गुरु सतगुरु नमो, नमो नमो गुरुदेव।
नमो विघ्न हरता गुरु, निर्मल जाको भेव।।5।।
ब्रह्मरूप सतगुरु नमो, प्रभु सर्वेश्वर रूप।
राम दिवाकर रूप गुरु, नाशक भ्रम-तम-कूप।।6।।
नमो सुसाहब सतगुरु, विघ्न विनाशक द्याल।
सुबुधि विगासक ज्ञान-प्रद, नाशक भ्रम-तम-जाल।।7।।
नमो-नमो सतगुरु नमो, जा सम कोउ न आन
परम पुरूषहू तें अधिक, गावें सन्त सुजान।।8।।

छप्पय

जय जय परम प्रचण्ड, तेज तम-मोह-विनाशन।
जय जय तारण तरण, करन जन शुद्ध बुद्ध सन।।
जय जय बोध महान, आन कोउ सरवर नाहीं।
सुर नर लोकन माहिं, परम कीरति सब ठाहीं।।
सतगुरु परम उदार हैं, सकल जयति जय-जय करें।
तम अज्ञान महान् अरू, भूल-चूक-भ्रम मम हरें।।1।।
जय जय ज्ञान अखण्ड, सूर्य भव-तिमिर-विनाशन।
जय-जय-जय सुख रूप, सकल भव-त्रास-हरासन।।
जय-जय संसृति-रोग-सोग, को वैद्य श्रेष्ठतर ।
जय-जय परम कृपाल, सकल अज्ञान चूक हर।।
जय-जय सतगुरु परम गुरु, अमित-अमित परणाम मैं।

नित्य करूँ, सुमिरत रहूँ, प्रेम-सहित गुरु नाम मैं।।2।।
जयति भक्ति-भण्डार, ध्यान अरू ज्ञान-निकेतन।
योग बतावनिहार, सरल जय-जय अति चेतन।।
करनहार बुधि तीव्र, जयति जय-जय गुरु पूरे।
जय-जय गुरु महाराज, उक्ति-दाता अति रूरे।।
जयति-जयति श्री सतगुरु, जोडि पाणि युग पद धरौं।
चूक से रक्षा कीजिये, बार-बार विनती करौं।।3।।
भक्ति योग अरू ध्यान को, भेद बतावनिहारे।
सतसंगति अरू सूक्ष्म वारता, देहि बताई
श्रवण मननिदिध्यास, सकल दरसावनिहारे।
अकपट परमोदार न कछु, गुरु धरे छिपाई।।
जय-जय-जय सतगुरु सुखद, ज्ञान सम्पूरण अंग सम।
कृपा-दृष्टि करि हेरिये, हरिय युक्ति बेढंग मम।।4।।

प्रातः कालीन नाम-संकीत्र्तन

अव्यक्त अनादि अनन्त अजय,
अज आदिमूल परमातम जो।
ध्वनि प्रथम स्फुटित परा धारा,
जिनसे कहिये स्फोट है सो ।।1।।
है स्फोट वही उद्गीथ वही।
ब्रहमनाद शब्दब्रहम ओउम् वही।
अति मधुर प्रणव ध्वनि धार वही,
है परमातम-प्रतीक वही ।।2।।
प्रभु का ध्वन्यात्मक नाम वही,
है सारशबद सत्शब्द वही।
है सत् चेतन अव्यक्त वहीं,
व्यक्तो में व्यापक नाम वहीं, ।।3।।
है सर्वव्यापिनि ध्वनि राम वही,
सर्व-कर्षक हरि-कृष्ण नाम वही।
है परम प्रचण्डिनि शक्ति वही,
है शिव शंकर हर नाम वही, ।।4।।
पुनि राम नाम है अगुण वही,
है अकथ अगम पूर्ण काम वही।।
स्वर-व्यंजन-रहित अघोष वही,
चेतन ध्वनि-सिन्धु अदोष वही ।।5।।
है एक ओउम् सतनाम वही,

ऋषि-सेवित प्रभु का नाम वही,
मुनि-सेवित गुरु का नाम वही।
भजो ॐ ॐ प्रभु नाम यही,
भजो ॐ ॐ मेंहीं नाम यही। ।।6।।

सन्तमत सिद्धान्त

1. जो परम तत्त्व आदि-अन्त-रहित, असीम, अजन्मा, अगोचर, सर्वव्यापक और सर्वव्यापकता के भी परे है, उसे ही सर्वेश्वर सर्वाधार मानना चाहिए तथा अपरा (जड़) और परा (चेतन); दोनों प्रकृतियों के पार में, अगुण और सगुण पर, अनादि-अनन्त-स्वरूपी, अपरम्पार शक्तियुक्त, देशकालातीत, शब्दातीत, नाम-रूपातीत, अद्वितीय, मन-बुद्धि और इन्द्रियों के परे जिस परम सत्ता पर यह सारा प्रकृति-मण्डल एक महान यन्त्र की नाई परिचालित होता रहता है, जो न व्यक्ति है और न व्यक्त है, जो मायिक विस्तृतत्व-विहीन है, जो अपने से बाहर कुछ भी अवकाश नहीं रखता है, जो परम सनातन, परम पुरातन एवं सर्वप्रथम से विद्यमान है, सन्तमत में उसे ही परम अध्यात्मपद व परम अध्यायत्म स्वरूपी परम प्रभु सर्वेश्वर (कुल्ल मालिक) मानते हैं।

2. जीवात्मा सर्वेश्वर का अभिन्न अंश है।

3. प्रकृति आदि-अन्त सहित है और सृजित है।

4. मायाबद्ध जीव आवागमन के चक्र में पड़ा रहता है। इस प्रकार रहना जीव के सब दुःखों का कारण है। इससे छुटकारा पाने के लिए सर्वेश्वर की भक्ति ही एकमात्र उपाय है।

5. मानस जप, मानस ध्यान, दृष्टि-साधन और सुरत-शब्द-योग द्वारा सर्वेश्वर की भक्ति करके अन्धकार, प्रकाश और शब्द के प्राकृतिक तीनों परदो से पार जाना और सर्वेश्वर से एकता का ज्ञान प्राप्त करके मोक्ष पा लेने का मनुष्य मात्र अधिकारी है।

6. झूठ बोलना, नशा खाना, व्यभिचार करना, हिंसा करनी अर्थात् जीवों को दुःख देना वा मत्स्य-मांस को खाद्य पदार्थ समझना और चोरी करनी; इन पाँचों महापापों से मनुष्यों को अलग रहना चाहिए।

7. एक सर्वेश्वर पर ही अचल विश्वास, पूर्ण भरोसा तथा अपने अन्तर में ही उनकी प्राप्ति का दृढ़ निश्चय रखना, सद्गुरु की निष्कपट सेवा, सत्संग और दृढ़ ध्यानभ्यास; इन पाँचों को मोक्ष का कारण समझना चाहिए।

श्री सद्गुरु की सार शिक्षा, याद रखनी चाहिए।
अति अटल श्रद्धा प्रेम से, गुरु-भक्ति करनी चाहिए।
मृग-वारि सम सबही प्रप´्चन्ह, विषय सब दुःख रूप हैं।
निज सुरत को इनसे हटा, प्रभु में लगाना चाहिए।।
अव्यक्त व्यापक व्याप्य पर जो, राजते सबके परे।
उस अज अनादि अनन्त प्रभु में, प्रेम करना चाहिए।।
जीवात्म प्रभु का अंश है, जस अंश नभ को देखिए।
घट मठ प्रप´्चन्ह जब मिटैं, नहिं अंश कहना चाहिए।।

ये प्रकृति द्वय उत्पत्ति लय, होवैं, प्रभू की मौज से।
ये अजा अनाद्या स्वयं हैं, हरगिज न कहना चाहिए।।
आवागमन सम दुःख दूजा, है नहीं जग में कोई।
इसके निवारण के लिए, प्रभु-भक्ति करनी चाहिए।
जितने मनुष तन धारि हैं, प्रभ-भक्ति कर सकते सभी।
अन्तर व बाहर भक्ति कर, घट-पट हटाना चाहिए।।
गुरु-जाप मानस ध्यान मानस, कीजिए दृढ़ साधकर।
इनका प्रथम अभ्यास कर सुरत शुद्ध करना चाहिए।।
घट-तम प्रकाश व शब्द पट त्रय, जीव पर हैं छा रहे।
कर दृष्टि अरू ध्वनि-योग-साधन, ये हटाना चाहिए।।
इनके हटे माया हटेगी, प्रभु से होगी एकता।
फिर द्वैतता नहिं कुछ रहेगी, अस मनन दृढ़ चाहिए।।
पाखण्ड अरूऽहंकार तजि, निष्कपट हो अरू दीन हो।
सब कुछ समर्पण कर गुरु की, सेव करनी चाहिए।
सत्संग नित अरू ध्यान नित, रहित करत संलग्न हो।
व्यभिचार चोरी नशा हिंसा, झूठ तजना चाहिए।।
सब सन्तमत सिद्धान्त ये, सब सन्त दृढ़ हैं कर दिए।
इन अमल थिर सिद्धान्त को, दृढ़ याद रखना चाहिए।।
यह सार है सिद्धान्त सबका, सत्य गुरु को सेवना।
'मेँहीँ' न हो कुछ यहि बिना, गुरु सेवा करनी चाहिए।

सन्तमत की परिभाषा

1. शान्ति स्थिरता वा निश्चलता को कहते हैं।

2. शान्ति को जो प्राप्त कर लेते हैं, सन्त कहलाते हैं।

3. सन्तों के मत वा धर्म को सन्तमत कहते हैं।

4. शान्ति प्राप्त करने का प्रेरण मनुष्यों के हृदय में स्वाभाविक ही है। प्राचीन काल में ऋषियों ने इसी प्रेरणा से प्रेरित होकर इसकी पूरी खोज की और इसकी प्राप्ति के विचारों को उपनिषदों में वर्णन किया। इन्हीं विचारों से मिलते हुए विचार को कबीर साहब और गुरु नानक साहब आदि सन्तों ने भी भारती और पंजाबी आदि भाषाओं में सर्वसाधारण के उपकारार्थ वर्णन किया। इन विचारों को ही सन्तमत कहते हैं; परन्तु सन्तमत की मूल भित्ति तो उपनिषद् के वाक्यों को ही मानने पड़ते हैं; क्योंकि जिस ऊँचे ज्ञान का तथा उस ज्ञान के पद तक पहुँचाने के जिस विशेष साधन नादानुसन्धान अर्थात् सुरत-शब्द-योग का गौरव सन्तमत को है, वे तो अति प्राचीन काल की इसी भित्ति पर अंकित होकर जगमगा रहे हैं। भिन्न-भिन्न काल तथा देशों में सन्तों के प्रकट होने के कारण तथा इनके भिन्न-भिन्न नामकरण होने के कारण सन्तों के मत में पृथकत्व ज्ञात होता है; परन्तु यदि मोटी और बाहरी बातों

को तथा पन्थाई भावों को हटाकर विचारा जाय और संतों के मूल एवं सार विचारों को ग्रहण किया जाय तो, यही सिद्ध होगा कि सब सन्तों का एक ही मत है।

आरती

आरती संग सतगुरु के कीजै।
अन्तर जोत होत लख लीजै ।।1।।
पाँच तत्व तन अग्नि जराई।
दीपक चास प्रकाश करीजै ।।2।।
गगन-थाल रवि-शशि फल-फूला।
मूल कपूर कलश धर दीजै ।।3।।
अच्छत नभ तारे मुक्ताहल।
पोहप-माल हिय हार गुहीजै ।।4।।
सेत पान मिष्टान्न मिठाई।
चन्दन धूप दीप सब चीजैं ।।5।।
झलक झाँझ मन मीन मँजीरा।
मधुर-मधुर धुनि मृदंग सुनीजै ।।6।।
सर्व सुगन्ध उड़ि चली अकाशा।
मधुकर कमल केलि धुनि धीजै ।।7।।
निर्मल जोत जरत घट माँहीं।
देखत दृष्टि दोष सब छीजै ।।8।।
अधर-धार अमृत बहि आवै।
सतमत-द्वार अमर रस भीजै ।।9।।
पी-पी होय सुरत मतवाली।
चढ़ि-चढ़ि उमगि अमीरस रीझै ।।10।।
कोट भान छवि तेज उजाली।
अलख पार लखि लाग लगीजै ।।11।।
छिन-छिन सुरत अधर पर राखै।
गुरु-परसाद अगम रस पीजै ।।12।।
दमकत कड़क-कड़क गुरु-धामा।
उलटि अलल 'तुलसी' तन तीजै । ।13।।

पूज्यपाद महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज द्वारा रचित आरती जो उपरिलिखित आरती आरती के बाद गायी जाती है -

आरति तन मन्दिर में कीजै।
दृष्टि युगल कर सन्मुख दीजै ।।1।।

चमके विन्दु सूक्ष्म अति उज्जवल।
ब्रह्मजोति अनुपम लख लीजै ।।2।।
जगमग जगमग रूप ब्रह्मण्डा।
निरखि निरखि जोती तज दीजै ।।3।।
शब्द सुरत अभ्यास सरलतर।
करि करि सार शबद गहि लीजै ।।4।।
ऐसी जुगति काया गढ़ त्यागि।
भव-भ्रम-भेद सकल मल छीजै ।।5।।
भव-खण्डन आरति यह निर्मल।
करि ‘मेंहीं अमृत रस पीजै ।।6।।